कृषिवानिकी

समाचार पत्र

राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी

भाकृअनुप ICAR

रा.कृ.वा.अ.के. NRCAF

अंक 12, सं० 3 (1) (तकनीकी विशेषांक) जुलाई-सितम्बर, 2000

माननीय कृषि मंत्री श्री नितिश कुमार जी द्वारा विज्ञान भवन, नई दिल्ली में दिनाँक 17 जुलाई, 2000 को आयोजित समारोह में केन्द्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. राम नेवाज एवं निदेशक डॉ. के. आर. सोलंकी को उनकी हिन्दी में लिखित पुस्तक "कृषिवानिकी के सिद्धान्त, महत्व एवं उपयोगिता" को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

तकनीकी हस्तांतरण के तहत जनपद झाँसी के ग्राम करारी में स्थित प्रदर्शन प्रक्षेत्र पर कृषिवानिकी तकनीकी अपनाने तथा उससे हुये आर्थिक लाभ के बाद अपनी फसल तथा फल वृक्षों की देख-रेख करता हुआ कृषक परिवार।

कायिक प्रवर्धन (गूटी विधि) द्वारा नीम के गुणात्मक पेड़ों का सफल गुणन

आर.वी. कुमार, वी.के. गुप्ता एवं के.आर. सोलंकी
राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी- 284 003 (उ.प्र.)

नीम (*एजेडिरक्टा इन्डिका* ए. जस.), भारतीय उप-महाद्वीप का प्राकृत वृक्ष है एवं अनेक बहुउद्देशीय वृक्षों में से इसकी अलग एवं अहम् पहचान है। इसका प्रमुख कारण नीम में उपस्थित अनेकों जीव सक्रिय सिद्धान्तों का उपस्थित होना हैं। नीम की गुणवत्ता एवं महत्ता को देखते हुए इसे 21वीं शताब्दी की अमूल्य निधि के रुप में जाना जा सकता है। एक अनुमान के मुताबिक भारत में नीम के 18 मिलियन वृक्ष उपलब्ध हैं एवं इन पेड़ों की क्षमता 5.40 मिलियन टन सालाना बीज उत्पादन की है। यही एक मात्र कारण है जिससे कि भारतीय कम्पनियाँ नीम के बीज को विधायित कर देश से बाहर निर्यात करने में कामयाब हो रहीं हैं। नीम में पाये जाने वाले महत्वपूर्ण घटकों में से एक घटक एजेडिरक्टिन की इसकी उपयोगिता में अहम भूमिका है। इस समय संसार के विभिन्न भागों में बनने वाली कीटनाशक एवं कवकनाशक दवाओं में एजेडिरक्टिन एक मुख्य घटक के रुप में प्रयोग में लायी जा रही है। आज के इस दूषित वातावरण में नीम के द्वारा निर्मित कवकनाशक एवं कीटाणुनाशक वायुमण्डल मित्रपरक की भूमिका निभा रहे है।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नीम की उपयोगिता को जानते हुए भी नीम के उन जनन द्रव्यों जिसमें एजेडिरक्टिन की मात्रा ज्यादा है का चयन या वरण अभी तक नहीं किया गया है। विभिन्न भूगर्भीय क्षेत्रों में नीम के बीज में पाये जाने वाली एजेडिरक्टिन की मात्रा के लिए काफी विविधता पायी गयी है एवं इसका परास 0.14 से 1.66 प्रतिशत तक पाया गया है।

कायिक प्रवर्धन जननिक रूप से समान गुणों वाले पौधों के गुणन का एक महत्वपूर्ण तरीका है। यह विधि खासकर पर परागित प्रजाति के लिए तो काफी महत्वपूर्ण है ही, उन स्व-परागित प्रजातियों के लिए भी महत्वपूर्ण है जिसमें कुछ हद तक पर-परागण की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी द्वारा नीम के गुणात्मक पेड़ों के सफल गुणन हेतू गूटी विधि द्वारा कायिक प्रर्वधन को प्रमाणीकृत किया गया है। गूटी विधि द्वारा तैयार पौधे 9 महीने के बाद फल देना शुरू कर देते हैं जिससे कि हम बीज के अन्दर एजेडिरक्टिन की मात्रा का सफल मूल्यांकन एक साल के भीतर कर सकते हैं। इस विधि द्वारा हमें कम से कम पाँच साल की बचत होती है और सबसे बड़ा फायदा यह होता है कि ज्यादा से ज्यादा जनन द्रव्य कम से कम जगह में लगाया जा सकता है। गूटी विधि द्वारा प्राप्त पौधों का सबसे बड़ा लाभ यह कि ये पौधे जननिक रुप से मातृ पौधों के समान होते हैं। इन पौधों में फूल एवं फल हरेक साल मई-जून के महीने में आते हैं जिससे कि जनन द्रव्य का मूल्यांकन अगर पहले साल नहीं हो पाया तो इसे दूसरे साल भी किया जा सकता है।

गूटी विधि द्वारा कायिक प्रवर्धन काफी आसान एवं आर्थिक रूप से लाभदायक है। एक कुशल श्रमिक काफी आराम से एक दिन में 60-70 गूटी तैयार कर सकता है। इस विधि द्वारा साधित शाखाओं में शत-प्रतिशत जड़ें निकलती है तथा पॉलीबैग में उनकी अतिजीविता भी शत-प्रतिशत तक पायी जाती है।

निदेशक की कलम से.....

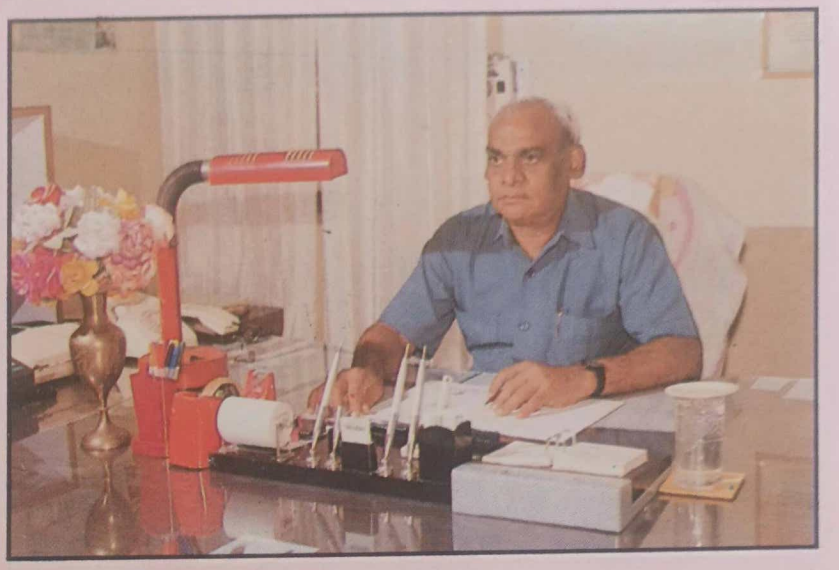

तकनीकी हस्तान्तरण कृषिवानिकी विस्तार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। कृषि अनुसंधान संस्थानों, केन्द्रों, विश्वविद्यालयों के अनुसंधान केन्द्रों पर हो रहे अनुसंधान कार्यों के निष्कर्षों पर आधारित तकनीकों से कृषि प्रसार कर्ताओं, किसानों को अवगत कराया जाना आवश्यक है। इसी को ध्यान में रखते हुये राजभाषा हिन्दी के स्वर्ण जयन्ती वर्ष के अवसर पर अद्यतन प्राप्त कृषिवानिकी विकास की तकनीकों को कृषकों तक उनकी अपनी भाषा में पहुँचाने के क्रम में "कृषिवानिकी समाचार पत्र" का तकनीकी विशेषांक हिन्दी भाषा में प्रस्तुत है। देश की लगभग 174 मिलियन हेक्टेयर भूमि जो किसी न किसी कारण से बंजर एवं उत्पादन अयोग्य है को कृषिवानिकी की विभिन्न तकनीकों के माध्यम से विकसित एवं उत्पादक बनाकर भूख, गरीबी, अशिक्षा, पर्यावरण जैसी गंभीर समयाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

(के.आर. सोलंकी)

गूटी विधि द्वारा नीम के कायिक पौध तैयार करने की तकनीक :

1 तरूण नीम (10-15 वर्ष आयु) के वृक्ष से 0.5-1.0 सेमी. मोटाई के व्यास के द्वितीयक/तृतीयक शाखाओं का चयन वर्षा ऋतु के समय करें।

2 चुनी हुई शाखाओं में से 2.0 - 2.5 सेमी. छिलका को आवश्यकतानुसार घाव बनाकर (प्रायः वलय बनाकर) शाखा के आधार से करीब 10-15 सेमी. की दूरी पर हटा लें।

3 बनाये गये घाव को मूलन सहायक रसायन (आई. बी.ए. 800 पी. पी. एम.) से उपचारित करें, यह उपचार रूई को मूलक सहायक रसायन से भिगोकर रूई के द्वारा उपचारित किया जाता है।

4 अब उपचारित भाग को पहले मास घास से बाँध दें, मास घास को बाँधने से पहले पानी में भिगोकर निचोड़ लें एवं इसे बनाये गये घाव के चारों तरफ अच्छी तरह से रखकर 200-300 गेज पारदर्शक पॉलीथिन की पट्टी लपेटकर सुतली से बाँध दें।

5 जड़ वाली शाखाओं को 60 दिन के बाद मातृ पौधे से अलग कर लें।

6 इसके बाद इन जड़ वाली शाखाओं का रोपण जिसमें कि बालू एवं मिट्टी का मिश्रण (1:1) डला हो, में कर दें।

7 पॉलीबैग में लगाये गये पौधों को प्रारम्भ में पानी का धिड़काव करते रहें, फिर समय-समय पर इसकी थोड़ी बहुत देखभाल करते रहें।

8 अगले वर्ष तक ये पौधे खेत में रोपण हेतु इस्तेमाल किये जा सकते है।

अमरूद के साथ धान व सब्जियों की बहारः टिकाऊ कृषिवानिकी से दोहरा लाभ

एल.डी. कोष्टा एवं एस.डी. उपाध्याय
कृषिवानिकी परियोजना, वानिकी विभाग
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

अमरूद मध्यप्रदेश की एक प्रमुख फलवाली फसल है। यह खेतों, खलिहानों, बगीचों, पड़ती भूमि, गृह वाटिका में बहुतायत में लगाया जाता है। मध्यप्रदेश में इसका क्षेत्रफल 7259 हेक्टेयर एवं उत्पादन करीब 145180 टन होता है। अमरूद में विटामिन-सी अधिकता से पाया जाता है। फल खट्ठा, मीठा, सुगंधित, उत्तेजक, त्रिदोषनाशक एवं शीतल वाला होता है। इसका वृक्ष 6-10 मीटर ऊँचा होता है एवं लगाने के 6-8 वर्षों बाद फल देने लगता है। वर्ष में 2 बार फल आते है तथा यह 30-40 इंच वर्षा वाले क्षेत्र में भी अच्छी फसल दे सकता है। अमरूद को प्रायः सभी प्रकार की भूमि में (सिंचित व असिंचित) उगाया जा सकता है।

आजकल किसान भाई इसकी खेती के साथ अन्य फसलें, सब्जियाँ इत्यादि को भी उगाकर अतिरिक्त लाभ कमाते है। यह एक टिकाऊ कृषिवानिकी पद्धति है। अमरूद के साथ कौन-कौन सी सब्जियाँ लाभप्रद तरीके से उगाई जा सकती है। इस बात को प्रमाणिकता देने के लिए वर्ष 1997-98 में वानिकी विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर में 10-12 वर्ष पुंराने 5x5 मीटर में रोपित वृक्षों के नीचे धान एवं उसके बाद विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ जैसे- पालक, मेथी, चौलाई, पत्ता गोभी, आलू एवं लौकी इत्यादि फसलों को लगाया गया तथा इसका आर्थिक ऑकलन भी किया गया।

सर्वप्रथम वर्षा ऋतु में अमरूद वृक्षों के नीचे धान किस्म जे. आर. 199 जो कि 90-95 दिनों की है को उगाया गया और पाया कि अमरूद की छाया में औसत उत्पादन 19 क्विंटल प्रति हेक्टयर मिला जबकि खुली जगह (बिना अमरूद) पर यह उत्पादन 22 क्विंटल प्रति हेक्टयर प्राप्त हुआ। इस प्रकार अमरूद की छाया में 3 क्विंटल प्रति हेक्टेयर धान का उत्पादन घटा जिसकी बाजार में कुल कीमत रूपये 1800 प्रति हेक्टेयर थी। अमरूद के साथ फसल लेने से अमरूद से 6960/- रूपये प्रति हेक्टेयर एवं धान फसल से (19 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) 11,400/- रूपये प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुआ। अतः अमरूद + धान से हमें 18,300/- रूपये मिले जबकि खुले में धान लगाने से रूपये 13,200/- प्रति हेक्टेयर लाभ प्राप्त हुआ। इस प्रकार अमरूद + धान लगाने से अकेले धान की तुलना में 5100/- प्रति हेक्टेयर का अतिरिक्त शुद्व लाभ प्राप्त हुआ।

धान के बाद इसी खेत में विभिन्न सब्जियाँ विभिन्न मौसम में साल भर तक लगाई गई और यह पाया गया कि अमरूद के साथ धान, पत्ता गोभी, लौकी क्रमशः लेने से प्रति हेक्टेयर शुद्व लाभ 44,100/- रूपया प्रति हेक्टेयर मिला।

बारानी में आँवला के साथ अन्तःफसलोत्पादन के गुर

राम नेवाज एवं खीमराज सोलंकी
राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी- 284 003(उ.प्र.)

भूमि एवं जलवायु :

आंवला मृदा एवं जलवायु की विपरीत परिस्थितियों के प्रति काफी सहिष्णु होता है। इसकी खेती 500 से 700 मिमी. वार्षिक वर्षा में भी की जा सकती है। आंवले की काश्त सभी प्रकार की भूमि में सफलतापूर्वक की जा सकती हे। ऊसर भूमि, जिसका पी. एच. मान 7.5 से 9.5 तक हो तथा बंजर भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती हैं। आंवला को जल भराव से काफी नुकसान होने की सभावना होती है तथा इस प्रकार की सम्भावनायें भारी मिट्टी में अधिक होती है। अतएव वर्षा ऋतु में उपयुक्त जल निकाय का प्रबन्ध अत्यन्त आवश्यक है।

रोपण विधि :

आंवले की कतार से कतार तथा पौधे की दूरी सामान्यतः 10 या 8 मीटर रखते है। जहाँ पर पेड़ लगाना है वहाँ माप करने के पश्चात् चिन्हित करने हेतू एक लकड़ी का टुकड़ा गाड़ देना चाहिए तथा 1x1x1 मीटर के आकार का गड्ढा वर्षा प्रारम्भ होने के पूर्व खोद लेना चाहिए। गड्ढे को गोबर की सड़ी हुई खाद, जमीन की ऊपरी मिट्टी तथा 100 ग्राम मैलाथियान पाउडर को मिलाकर भर देना चाहिए। वर्षा प्रारम्भ होने के तुरन्त बाद पौधे की रोपाई कर देनी चाहिए तथा उसके किनारे के मिट्टी को भलीभाँति दबा होना चाहिए। पौधों को लगाते समय यह ध्यान देना चाहिये कि पौध स्वस्थ तथा अच्छी किस्म का हो।

खाद एवं उर्वरक :

दलहनी फसलें जैसे उर्द, मूँग, अरहर, मूंगफली आदि में 15 किलोग्राम नत्रजन तथा 40 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। इस मात्रा को 100 किलोग्राम डी.ए.पी. से पूरा किया जा सकता है। खाद एवं उर्वरक की मात्रा, भूमि की उर्वराशक्ति, पानी की उपलब्धता एवं वृक्ष की उम्र पर निर्भर करती है। अतएवं खाद एवं उर्वरक की मात्रा निर्धारण के पहले मिट्टी की जाँच कराना उचित रहता है। साधारणतयः आंवले के एक वर्ष के पौधे को 10 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 150 ग्राम यूरिया, 200 ग्राम डी. ए. पी. एवं 100 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश की आवश्यकता है। यह मात्रा 10 वर्ष तक बढ़ाते हुए दशवें वर्ष व उसके उपरान्त 100 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 1500 ग्राम यूरिया, 2000 ग्राम डी. ए. पी. एवं 1000 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वृक्ष के हिसाब से दी जा सकती है। बारानी क्षेत्र में खाद एवं उर्वरक की उपरोक्त मात्रा जुलाई-अगस्त में दी जानी चाहिये जिससे पौधे को अधिक लाभ मिल सकें।

नमी संरक्षण :

बारानी क्षेत्र में पानी का विशेष महत्व है इसके लिये आवश्यक है कि वर्षा के पानी को भूमि में नमी के रूप में अधिक समय तक संरक्षित किया जाय। इससे पौधों की वृद्धि संतोषजनक होती है एवं नमी के अभाव में फल गिरने की समस्या को कम किया जा सकता है

जिससे फलों की पैदावार अच्छी होती है इसके लिये प्रथम तरीका यह है कि पेड़ के किनारे इस प्रकार का आकार दिया जाय जिसमें पानी एकत्रित हो। इसके लिये पेड़ों को सकन विधि से रोपित करना चाहिऐ। अन्य विधियों में, पेड़ के किनारे सुखी पत्तिया, घास, सड़ी हुई गोबर की खाद, पुवाल आदि को बिछा देते है जिससे पानी का वाष्पोत्सर्जन कम हो जाता है तथा भूमि में नमी संरक्षित रहती है। वर्षा ऋतु में ढलान वाले खेतों में, ढलान के विपरीत मेड़ बना कर पानी को रोका जा सकता है तथा मिट्टी के क्षरण को कम किया जा सकता है।

अन्तःफसलोत्पादनः

फलदार वृक्षों के किनारों के बीच के स्थान को फसल उत्पादन हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है। अन्तःफसल का चुनाव वर्षा की मात्रा एवं मृदा के अनुसार करते है क्योंकि बारानी क्षेत्रों में फसल का उत्पादन पूर्णतः वर्षा पर निर्भर करता है। खरीफ ऋतु में उर्द, मूँग, तिल, सोयाबीन आदि तथा अरबी में यदि भूमि में नमी उपलब्ध हो तो तोरिया या तारामीरा की खेती की जा सकती है। फल वृक्षों के साथ अन्तःफसलोत्पादन से सबसे अधिक फायदा यह है कि शुरू-शुरू में जब वृक्षों से फल नहीं मिलता है इस समय फसल से कुछ आमदनी मिल जाती है तथा फसल की निराई-गुड़ाई करने से फल वृक्षों का भी उचित देखभाल होता है। ऑवले के साथ अन्तःफसलोत्पादन काफी लम्बे समय तक (15 वर्ष से अधिक) तक किया जा सकता है। इस प्रकार फसलोत्पादन में जो कमी, पेड़ों द्वारा उत्पन्न प्रतिस्पर्धा के कारण होती है उसकी भरपाई फलों द्वारा हो जाती है तथा कुल उत्पादन अधिक होता है।

उर्द की बुआई जुलाई के दूसरे या अंतिम सप्ताह में अवश्य कर देनी चाहिये। उर्द को पेड़ों की कतारों के बीच 25 सेमी. की दूरी पर बोना चाहिये तथा इसके लिये 10 से 15 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर प्रयोग करना चाहिये।

बारानी क्षेत्र में, पेड़ों के साथ अन्तःफसलोत्पादन के अन्तर्गत यादि जमीन को ढकने वाली फसल जैसे उर्द, मूँग या मूँगफली को उगाते है तो मृदा संरक्षण में मदद मिलती है साथ ही साथ भूमि में कार्बनिक पदार्थ व पोषक तत्वों की वृद्धि होती है इस प्रकार पेड़ों व फसलों से जो पत्तियाँ गिरती है उससे भूमि की भौतिक दशा में भी सुधार होता है। आंवलें के साथ 10 वर्षो तक उर्द को अन्तःफसलोत्पादन के अन्तर्गत उगाने के पश्चात् मिट्टी परीक्षण किया गया तो ज्ञात हुआ कि भूमि में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में 62 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस प्रकार फल व खाद्यान्न के उत्पादन के साथ भूमि की उर्वराशक्ति में भी सुधार हुआ जो कि टिकाऊ उत्पादन के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

वृक्षों का प्रबन्धन :

नव स्थापित आंवला के पौधों की काट-छॉट इस प्रकार करनी चाहिये जिससे कम से कम एक मीटर तक मुख्य तना सीधा एवं शाखा रहित रहें। उसके बाद 5-6 शाखायें विभिन्न दिशाओं में इस प्रकार विकसित हा कि वृक्ष का ढाँचा मजबूत एवं संतुलित रहे। अवांछित, सूखी एवं परम्पर फसनें वाली शाखाओं को निकाल देना चाहिये। आंवले के 6-12 वर्ष की उम्र के वृक्षों में अधिक फल बोझ से शाखायें टूटने की समस्या रहती है इसलिए ऐसी शाखाओं को नीचे से लकड़ी की टेक लगाकर सहारा देना चाहिए।

उत्पादन :

फल उत्पादन : आंवले की उन्नत किस्में 4 वर्ष की आयु से फल देना प्रारम्भ कर देती है तथा 10-12 वर्ष में जब पेड़ की बढ़त अच्छी हो जाती है तो एक पेड़ से 160 से 200 किग्रा. फल का उत्पादन प्राप्त होता है। राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी द्वारा वर्ष 1989-90 से आंवलें की चार प्रजातियों (चकैया, कंचन, कृष्णा, एन. ए.-7) को अन्तःफसलोत्पादन के अन्तर्गत उगाया जा रहा है। इस पद्धति से शुरू-शुरू में फल का उत्पादन कम हुआ परन्तु आठवें वर्ष से अच्छा उत्पादन प्राप्त हुआ। दसवे वर्ष में विभिन्न प्रजातियों से औसत उत्पादन 40-90 किग्रा. प्रति पौधा तथा एक पेड़ से अधिकतम उत्पादन 190 किग्रा. तक प्राप्त हुआ।

दाने की उपजः

बारानी क्षेत्र में खरीफ ऋतु की फसल लेना ही प्रायः सम्भव होता है परन्तु यदि भूमि में नमी को संरक्षित किया जाय तथा फसलों की बुआई समय से की जाय तो रबी में भी फसलें ली जा सकती है। राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी द्वारा आंवले के साथ उर्द को अन्तःफसलोत्पादन पद्धति में उगाने से, फलों के उत्पादन के अतिरिक्त अन्तःफसल (उर्द) से 1.4 से 3.1 क्विंटल दाने का उत्पादन प्रतिवर्ष प्रति है. प्राप्त हुआ। बारानी क्षेत्र में दाने के उत्पादन में प्रत्येक वर्ष बहुत असमानता होती है। क्योंकि उत्पादन वर्षा की मात्रा तथा उसके वितरण पर निर्भर करती है।

देखभाल :

उर्द की बुआई के बाद तीसरे या चौथे सप्ताह में खर-पतवार को नियंत्रण करने के लिये पहली निराई अवश्य कर देनी चाहिये तथा यदि आवश्यक हो तो दूसरी निराई 40-45 दिन बाद कर देनी चाहिये। खर-पतवार को रासायनिक विधि से नष्ट करने के लिये पेन्डिमेथलीन रसायन को 1.0 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुवाई के पूर्व भूमि पर छिटक कर मिला देना चाहिए। आंवलें के कलमी पौधें के लगाने के बाद, प्रारम्भ के एक वर्ष तक अधिक देखभाल की जरूरत पड़ती है। पौधें के लगाने के बाद, जहाँ से कलम किया गया हे उस बिन्दु के नीचे से यदि कोई नई शाखा निकलती ही तो उसे तुरन्त काट देनी चाहिये। कृषिवानिकी में, पेड़ का उचित आकार का काफी महत्व होता है क्योंकि अन्तःफलोत्पादन के लिये टैक्टर या बैल से जुताई करते समय कोई व्यवधान न आये। इसके लिये जरूरी है कि पेड़ के नीचे की शाखाओं का आवश्यकतानुसार काट-छाँट करनी चाहिये। आंवले के एक ही प्रजाति की रोपाई नहीं करनी चाहिए इसके लिये कम से कम दो प्रजाति को सम्मिलित करके स्वःनिषेचन की समस्या से बचा जा सकता है।

आंवले में कोई खास बीमारी व कीड़े का प्रकोप नही होता है। इसमें दो कीड़े मुख्यतः नुकसान पहुँचाते है। प्रथम शूटगाल मेकर, यह कीट शाखा के शीर्ष भाग में छेद करके जुलाई-अगस्त में अन्दर घुसकर जगह बना लेता है जिससे वहाँ गाँठ बन जाती है। इसकी रोकथाम के लिये गाँठे वाले भाग को जनवरी में काट कर नष्ट कर देना चाहिये तथा इन्डोसल्फान (1 मिली./लीटर पानी) नामक कीट नाशक का छिड़काव जुलाई-अगस्त में करना चाहिये। दूसरा तना बेथक कीट से नुकसान होता है। यह कीट शाखाओं में छेद बना कर पौधें को कमजोर कर देता है। इसके रोकथाम के लिये छिद्रों में पेट्रोल या मिट्टी का तेल या सल्फास की गोली ढाककर गीली मिट्टी से बंद कर देनी चाहिए।

तने की मोटाई व वृतान के फैलाव के आधार पर चिरौंजी में पौध रोपण की दूरी का निर्धारण

आर.के तिवारी, सी.के. बाजपेयी एवं एस.पी. सिंह चौहान
राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी- 284 003(उ.प्र.)

भारत विविध जलवायु व मृदा वाला देश है। इसलिए यहाँ विभिन्न प्रजाति के फल-वृक्ष पाये जाते हैं, जिनमें कुछ की काश्त की जाती है, शेष प्रकृति में यत्र-तत्र स्वतन्त्र रूप से उगते हैं और हमें स्वादिष्ट फल देते हैं। बहुत से फलदायी वृक्ष अभी भी लघु वनोपज वाली प्रजातियों के रूप में जाने जाते हैं और जैसे-जैसे उनके फलों की माँग, औषधीय गुणों की पहचान बढती है, वैसे-वैसे वृक्ष से आमदनी की उम्मीद वढ़ती जाती है। ऐसे वृक्षों को हम सुनियोजित बाग के रूप में लगाने का प्रयास करते हैं तथा फल-वृक्ष या औषधीय पेड़ के रूप में मान्यता देते हैं। सम्प्रति चिरौंजी, महुवा, इमली, लसोढ़ा, आंवला आदि इसी क्रम से गुजर रहे हैं।

कुछ प्रजातियों जैसे आंवला, इमली को छोड़कर शेष प्रजातियों की बागवानी करने के लिए तत्सम्बन्धित कृषि क्रियाओं की जानकारी का प्रायः अभाव है जैसे पेड़ से पेड़ की दूरी, बीज बोने का समय व जमाव, उनकी बढ़वार दर, खाद-पानी की आवश्यकता, फलन की उम्र आदि। कुछ

प्रजातियों के बीज द्वारा या वानस्पतिक प्रसारण द्वारा पौधे तैयार करने के छिट-पुट प्रयास भी किये गये है परन्तु अन्य जानकारियों का अभी तक अभाव है।

चिरौंजी (बुचनैनिया लैंजन स्प्रेंग) एक ऐसा ही फल वृक्ष है जो अभी तक लघु वनोपज प्रजाति की श्रेणी में आता है। इसके गुणों व आय को ध्यान में रखते हुए इसे फल-वृक्ष की श्रेणी में लाने का एक प्रयास रा.कृ.वा.अनु. केन्द्र, झाँसी में चल रहा है।

बाग प्रतिस्थापन हेतु पेड़ से पेड़ की दूरी निश्चित करने के लिए डॉ. आर. वी. सिंह (अध्यक्ष शोध सलाहकार समिति, रा.कृ.वा.अनु.के., झाँसी एवं भूतपूर्व महानिदेशक, भा. वन अनु. व शिक्षण परिषद, देहरादून) की सलाह पर एक अपरोक्ष विधि अपनाकर शोध किया गया जिसमें प्रकृति में उग रहे पौधो की 1.37 मी. की ऊँचाई पर (मनुष्य की छाती की ऊँचाई) तने की गोलाई तथा उसके वृतान का फैलाव पूर्व-पश्चिम/उत्तर-दक्षिण दिशाओं में मापा गया। उक्त अध्ययन हेतु मड़ावरा फारेस्ट रेंज, ललितपुर (उ.प्र.) में छितरापुर गाँव के आस-पास के वृक्षों को चुना किया गया जहाँ चिरौंजी के पेड़ बहुतायत में पाये जाते हैं। विभिन्न तना गोलाई वर्ग के अनुसार पाँच-पाँच पौधों का रैंडम चयन किया गया इस प्रकार कुल 55 पौाधों पर प्रेक्षण अंकित किया गया।

यह स्पष्ट है कि तने की गोलाई का सीधा सम्बन्ध वृतान के फैलाव से हैं। गोलाई बढ़ने के साथ वृतान का फैलाव भी बढ़ता गया जो वस्तुतः पौधे की बढ़ती उम्र के साथ तालमेल रखता प्रतीत होता है। प्रस्तुत अध्ययन में अधिकतम तने की गोलाई 1.42 मी. प्रेक्षित की गयी और वृतान का औसत फैलाव 8.25 मी. तक अंकित किया गया। अधिकांश पेड़ 8 मी. से कम वृतान फैलाव वाले देखे गये। जबकि 47 सेमी. से अधिक गोलाई के पेड़ों का वृतान फैलाव 3.5 मी. से 7.0 मी. के मध्य पाया गया। ऐसे पेड़ जिनकी गोलाई 100 सेमी. से अधिक थी, संख्या में बहुत कम पाये गये और उनका वृतान फैलाव औसतन 8 मी. पाया गया जो प्राय किसानों के खेत में मेड़ पर उगते दिखाई दिये। स्पष्टतः ये पौधे किसानों द्वारा सुरक्षित किये गये थे। इस आधार पर निष्कर्ष निकाला गया कि चिरौंजी का बाग लगाते समय पौध से पंक्ति की दूरी 8x8 मी. रखनी चाहिए। इससे कम या अधिक दूरी पर पौधरोपण या तो सघन होगा या फिर भूमि का अपव्यय।

अन्य वृक्षों जैसे महुआ, लसोढ़ा अदि पौधों के रोपण की दूरी भी इस विधि से निकाली जा सकती हैं। यह विधि सरल, सस्ती व कम समय में परिणाम देने वाली है।

वन चरागाह आधारित भेड़ बकरी पालन

प्रसिद्धि राय एवं उदय प्रताप सिंह
राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी- 284 003 (उ.प्र.)

हमारे देश में जानवरों की कुल संख्या बहुत अधिक है इसके बावजूद भी इनसे प्राप्त होने वाले दूध, माँस, ऊन आदि की पूर्ति हम लोगों को नहीं हो पाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि हम इनको आवश्यकतानुसार पौष्टिक चारा नहीं दे पाते हैं। पौष्टिक चारा की पूर्ति न देने का कारण यह है कि इनकी संख्या इतनी अधिक है कि जो क्षेत्रफल हमारे देश में चरागाह के लिये है वह पर्याप्त नहीं है और वर्तमान में जो भी चरागाह है उनकी अत्यधिक चराई करने से स्थिति क्षीण हो गयी है। अतः इनसे अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये इनकी संख्या में कमी तथा उचित प्रबन्धन की आवश्यकता

है। इस आधारभूत आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुये राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी से कृषि-वन-चरागाह पद्धति में छोटे जानवरों का पालन संबंधी तकनीक विकसित की गयी है।

भेड़ एवं बकरी पालन हेतु एक वन चरागाह राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र के प्रक्षेत्र पर स्थापित किया गया। यहाँ कि जलवायु अर्ध शुष्क है। शरद ऋतु में पौधे शुषुप्ता अवस्था में रहते है जबकि वर्षा एवं ग्रीष्म ऋतु में पौधों की वृद्धि अच्छी होती हैं। औसतन यहाँ वर्षा 900 मि.मी. होती है। जिसमें 80 प्रतिशत से अधिक जुलाई से सितम्बर में ही होती है। वर्षा का वितरण भी सही तरीके से नहीं हो पाता है जिससे चारा उत्पादन पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। वार्षिक तापक्रम साधारणतया अधिक होता है। गर्मी, वर्षा एवं शरद ऋतु का तापक्रम क्रमशः 30-40° सेन्टीग्रेट, 20-24° सेन्टीग्रेट और 14-21° सेन्टीग्रेट होता हैं। मई एवं जून का महीना सबसे अधिक गर्म रहता है। कभी-कभी तापक्रम 48° सेन्टीग्रेट से भी अधिक चला जाता है। जबकि न्यूनतम तापक्रम दिसम्बर-जनवरी में होता है। कभी-कभी दिसम्बर-जनवरी में 2° सेन्टीग्रेट तक तापक्रम नीचे चला जाता है।

यहाँ की मिट्टी अधिकतर लाल राकड़ प्रकार की है जिसमें उर्वरा शक्ति बहुत कम पायी जाती है। कही-कही पर काली मिट्टी भी पायी जाती है। इन दोनों प्रकार की मिट्टियों में भूमि की गहराई बहुत कम होती है। नीचे कड़ी परत पायी जाती है। इन भूमियों में जगह-जगह पत्थर भी पाया जाता है जहाँ पर कुछ भी उगाया नहीं जा सकता।

वन चरागाह में दो तरीके के पेड़ जैसे काला सिरिस एवं सुबबूल एवं एक झाड़ी (नूतन) जुलाई-अगस्त में लगाया गया। कतार से कतार तथा पौधे से पौधे की दूरी 5 मी. रखी गयी। एक कतार में काला सिरिस तथा दूसरी कतार में नूतन फिर तीसरी में काला सिरिस फिर चौथी में नूतन इसी क्रम में दो हेक्टेयर क्षेत्र में स्थापित किये गये तथा दो पौधों के बीच में दोनों जातियों में सुबबूल लगाया गया। इस तरह 200 पौधे काला सिरिस 200 पौधे नूतन एवं 400 पौधे सुबबूल के लगाये गये। पेड़ों के दो कतारों के बीच में धवलू घास 100 सेमी. x 50 सेमी. की दूरी पर लगायी गई। घास के दो लाइनों के बीच में करेबियन स्टाइलो एवं स्टाइलो स्केबरा का मिश्रण चार किलोग्राम/हे. के हिसाब से बोया गया। वन चरागाह के एक हेक्टेयर क्षेत्र को चार भागों में विभाजित करके चक्रीय क्रम में चराई करायी गयी तथा एक हेक्टेयर क्षेत्र के घासों को काटकर दूसरे जानवरों को खिलाया गया। वन चरागाह के स्थापना के 15 महीने के बाद 6 नर (उम्र ढाई से तीन वर्ष) तथा 6 बकरे (उम्र डेढ़ से दो वर्ष) मिश्रित चराई के उद्देश्य से चरने के लिये छोड़ा गया। चराई 241 दिन तक की गयी। भेड़ एवं बकरी की नस्ल क्रमशः मुजफ्फरनगरी एवं बरबरी थी। इसके बाद इसी वन चरागाह में स्थापना के 24 महीने बाद 6 भेड़ एवं 6 बकरों के बच्चे जिनकी उम्र 4-6 महीना थी चरने के लिये चक्रीय क्रम में छोड़ा गया। चराई 690 दिन तक करायी गयी।

उपर्युक्त परीक्षणों से पता चलता है कि बारह छोटे जानवरों (6भेड़ एवं 6 बकरे) को सालभर वन चरागाह द्वारा पालन पोषण किया जा सकता है। भेड़ एवं बकरे के बच्चों के वजन में वृद्धि क्रमशः 54 एवं 36 ग्राम/बच्चा/दिन प्राप्त हुआ। इतनी वृद्धि इन बच्चों को 478 दिन चराने पर मिली और शेष 212 दिन चरने पर इन भेड़ एवं बकरों का वजन बराबर बना रहा। अर्थात वजन में वृद्धि या कमी नहीं हुई।

इससे पता चलता है कि एक हेक्टेयर वन चरागाह में 12 छोटे जानवर साल भर रखे जा सकते है। इसके दौरान उनके वजन में कोई कमी नहीं हुई। इससे यह साबित होता है कि वन चरागाह को लगातार अनेको वर्षों तक बनाये रखने के लिये 12 छोटे जानवर प्रति हे./वर्ष के हिसाब से पर्याप्त है।

क्षीण भूमियों का औषधीय वृक्षारोपण द्वारा पुनर्स्थापना

आर. के. तिवारी, सी. के. बाजपेयी एवं के. आर. सोलंकी
राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी- 284 003 (उ.प्र.)

क्षीण भूमियों का पुनर्स्थापन जैव पुंज उत्पादन बढ़ाने, पारिस्थितिकीय संतुलन कायम रखने तथा क्षरण प्रक्रिया को उलटने के लिए आवश्यक है। प्रायः इनका सदुपयोग बहुवर्षीय घास व पेड़ लगाकर करने की सिफारिश की जाती है। विगत वर्षों में देश में औषधीय पेड़ों की माँग बढ़ी है। बढ़ती जनसंख्या के बिगड़ते स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए औषधीय वृक्षों के रोपण पर अधिक जोर दिया जा रहा है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए रा.कृ.वा.अनु.के. झाँसी में कुछ औषधीय पेड़ों को क्षीण भूमि में उगाने का प्रयास 1999 में किया गया। इनकी जीवितता व बढ़वार के ऑकड़े एक वर्ष पश्चात् दर्ज किये गये, जिनकी विवेचना प्रस्तुत शोध-पत्र में की गयी है।

एक वर्ष पुराने नर्सरी में पाली बैग में उगायी गयी पौध को जुलाई माह में खोदे गये गड्ढों (60x60x60 सेमी.) में 5x5 मी. की दूरी पर लगाया गया। प्रत्येक प्रजाति के 10 पौधे रोपित किये गये। रोपण के समय प्रति गड्ढा 100 ग्रा. डी.ए.पी. खाद दी गयी थी। पौधे असिंचित दशा में उगाये गये। पौधों के बीच से समय-समय पर झाँड़ियों निकाली गयी। उक्त रोपण के एक वर्ष पश्चात् जून-2 में प्रेक्षण अंकित किये गये। आँकड़ो से ज्ञात होता है कि इमली अर्जुन व बहेड़ा की जीवितता 100% रही जबकि आंवला व अमलताश की केवल 80%। सबसे कम जीवितता अशोक (10% केवल) में दर्ज की गयी। सर्वाधिक औसत ऊँचाई 1.75 मी. अर्जुन की अंकित की गयी, तत्पश्चात् इमली 1.38 मी. व आंवला (0.35 मी.) की अंकित की गयी। पौधे के तने की मोटाई (जमीन के पास) सर्वाधिक अर्जुन में 2.33 सेमी, तत्पश्चात् आंवला में 2.0 सेमी पायी गयी। सबसे कम मोटाई अशोक व अमलताश की (0.8 तथा 0.81 सेमी.) क्रमशः नापी गयी। प्रेक्षण करते समय पाया गया कि अमलताश के बहुसंख्य पौधे बीती गर्मी में ऊपर से सूख गये थे और पुनः वर्षा पाकर इनमें नये कल्ले नीचे से फूट पड़े। इससे इनकी जीवितता तो अच्छी मिली परन्तु बढ़वार कम ही रही उक्त परीक्षण में अमलताश के एक पौधे की ऊँचाई 1.28 मी. और मोटाई 1.2 सेमी. तक अंकित की गयी। दूसरे अमलताश के पत्तों पर इल्ली का अत्याधिक प्रकोप देखा गया जिससे अधिकतर पौधों की पत्तियाँ कीड़े द्वारा खायी गयी दिखी। विभिन्न पौधों की व्यक्तिगत बढ़वार नापने से पता चला कि अधिकतम ऊँचाई आंवले की 2.63 मी. तथा तने की मोटाई 2.9 सेमी. तक पायी गयी।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि असिचिंत दशा में क्षीण भूमियों का उपयोग औषधीय पौधे उगाने हेतु किया जा सकता है। अर्जुन, इमली, बहेड़ा, आंवला तथा अमलताश औषधीय वृक्ष प्रजातियाँ इसके लिए उत्तम है। कचनार भी एक अन्य प्रजाति इसके लिए उत्तम है। बढ़वार के दृष्टिकोण से अर्जुन, आंवला, इमली व कचनार तेज बढ़ने वाले तथा बहेड़ा अपेक्षाकृत धीरे बढ़ने वाला पाया। ज्ञात हो कि क्षीण भूमियों के संरक्षण हेतु तेज बढ़ने वाली प्रजातियाँ जो शीघ्र वानस्पतिक आवरण प्रदान कर सकें, अच्छी मानी जाती हैं। अशोक के वृक्ष इस प्रकार की भूमियों के अनुपयुक्त पाये गये।

उपरोक्त परिणाम प्रक्षेत्र पर देखे गये जहाँ उन्हें जानवरों से सुरक्षा प्राप्त है। अतः किसानों के खेत या खुले वन क्षेत्र में लगाते समय इनकी जानवरों से सुरक्षा सुनिश्चित करना अनिवार्य है।

कुमट, असिंचित शुष्क क्षेत्रों के लिए एक उपयुक्त सजीव बाड़

एस. एस. जैमिनी, एन. एम. पटेल, पी. एम. पटेल एवं जे. एम. पटेल
अखिल भारतीय समन्वित कृषिवानिकी परियोजना
गुजरात कृषि विश्वविद्यालय, सरदार कृषि नगर- 385 506 (गुजरात)

गुजरात राज्य के शुष्क क्षेत्रों में जहाँ चरागाह लगभग खत्म हो चुके है तथा जंगल का क्षेत्र भी दिनोंदिन कम हो रहा है, जहाँ पर पालतू पशुओं तथा जंगली जानवर जैसे कि नील गाय इत्यादि से फसलों तथा अन्य पेड़ पौधों की बचाना दिनोंदिन बहुत मुश्किल हो रहा है। इन परिस्थितियों में सजीव बाड़ का महत्व बहुत ही ज्यादा बढ़ गया है। इसको ध्यान में रखते हुए गुजरात कृषि विश्वविद्यालय के सरदार कृषि नगर मुख्यालय पर कार्यरत अखिल भारतीय कृषि वानिकी योजना के अंतर्गत शुष्क क्षेत्रीय सात विभिन्न काँटेदार झाड़ियों जैसे करौदा (*केरीसा करेन्डस*), बोगन पीलिया, कुमट (*अकेसिया सनेगल*), बेर (*जीजीफस रोटेन्डीफोलिया*), काथकी (*सीसलपीनिया क्रिस्टा*), केतकी (*अगेव कंटाला*) और डंडाथोर (*युफोरबीया*) का सजीव बाड़ हेतु मूल्याकंन या परिक्षण करने के लिए कृषिवानिकी फार्म की सीमा पर जुलाई, 1997 में लगाया गया। प्रत्येक बाड़ का चार बार पुनःवर्तन किया गया। यह परीक्षण वर्षा आधारित था। साल में दो बार फरवरी और अगस्त माह में बढ़वार तथा जीवित रहने की क्षमता के लिए अवलोकन किया गया।

शुष्क क्षेत्रीय जलवायु, रेतीली भूमि तथा बिन सिंचाई की परिस्थिति में सजीव बाड़ की परीक्षण के पहले दो साल में करौंदा, थार एवम बोगनवीलिया प्रजातियों में जीवित रहने की क्षमता सौ प्रतिशत पाई गई। अन्य प्रजातियों में जीवित क्षमता सत्तर से नब्बे प्रतिशत थी। लगभग एक साल बाद पौधों को काट-छाँट कर ''बाड़'' का रूप दिया गया फरवरी-2000 में लिए गये अवलोकन अनुसार इन काँटेदार प्रजातियों में सिचाई न देने की परिस्थितियों में बोगनवीलिया, बेर एवम् कुमट का सजीव बाड़ का रूप में अच्छा प्रदर्शन रहा। फरवरी-2000 में बोगनवीलिया, बेर व कुमट की ऊँचाई कटाई छटाई के बाद क्रमशः 166, 169 और 156 सेन्टीमीटर थी। इन तीनों में से कुमट का प्रदर्शन गहरी बाड़ तथा हूक जैसे तीक्ष्ण काँटे होने के कारण सर्वोत्तम रहा। ''हूक'' जैसे काँटो के कारण यह बाड़ जंगली जानवर जैसे नीलगाय तथा अन्य पालतू जानवरों को रोकने में सर्वोत्तम पाई गई।

उत्तर गुजरात में गत वर्ष अकाल की विकट परिस्थिति होने पर भी गर्मियों के महिनों में विशेषकर मई-जून के माह में इस प्रजाति का प्रदर्शन भी सर्वोत्तम रहा। मई-जून की भीषण गर्मी तथा पानी की कमी से अन्य प्रजातियों पर प्रतिकूल प्रभाव देखा गया जबकि कुमट पर सूखे तथा गर्मी का कोई प्रभाव नहीं था। कुमट नीलनाय और पालतू जानवरों से फसलों और पौधों के बचाने के साथ-साथ बकरी, ऊँट ईत्यादि के लिए चारा तथा ईंधन की आवश्यकता भी पूरी करती है। जून-2000 में विभिन्न कंटक प्रजातियों के प्रदर्शन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शुष्क क्षेत्रों में अन्य कंटक प्रजातियों के मुकाबले कुमट सजीव बाड़ के लिए सर्वोत्तम है।

कृषिवानिकी : टिकाऊ आय का साधन

के. करीमुल्ला, राम नेवाज, एस.के. शुक्ला, रमेश सिंह एवं के. आर. सोलंकी
राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी- 284 003(उ.प्र.)

प्राचीन काल से ही किसान खेती के साथ वृक्ष लगाते आ रहे हैं। इस प्रथा को तकनीक आधारित प्रायोगिक रूप देने के लिए सन् 1988 मे अपनी स्थापना के साथ ही राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी ने विभिन्न प्रायोगिक ट्रायल्स में तरह-तरह के वृक्षों के साथ फसल लगाने का कार्य प्रारम्भ किया। जिसमें आँवला आधारित कृषि उद्यानिकी पद्धति (असिंचित), अमरूद आधारित कृषि उद्यानिकी पद्धति (सिंचित) तथा आँवला-सुबबूल आधारित कृषि वन उद्यानिकी

पद्धति (असिंचित) पर भी अनुसंधान कार्य हुआ। इन तीनों ही पद्धतियों में खरीफ में उर्द की फसल जबकि सिर्फ अमरूद आधारित पद्धति में रबी में भी गेहूँ की फसल ली गयी।

अमरूद आधारित पद्धति में चौथे वर्ष से उत्पादन शुरू हुआ जो आठवे वर्ष स्थिर हो गया जबकि आँवला आधारित पद्धति में उत्पादन पाँचवे वर्ष प्रारम्भ हुआ। इन पद्धतियों से फल, अन्न, लकड़ी, भूसा एवं चारा उत्पाद के रूप में प्राप्त हुआ। इन पद्धतियों के आर्थिक विश्लेषण के दौरान वृक्ष लगाने में प्रारम्भिक खर्च, फसल लेने मे खर्च तथा सिर्फ फसल से होने वाली आय का ध्यान रखते हुए आँवला आधारित पद्धतियों तथा अमरूद आधारित पद्धति के क्रमशः 11 वर्ष एवं 10 वर्ष के अध्ययन का आर्थिक विश्लेषण किया गया तथा यह पाया गया कि अमरूद आधारित कृषि उद्यानिकी पद्धति में वर्तमान मूल्य एवं डिस्काउण्टेड मूल्य के आधार पर लाभ-लागत अनुपात क्रमशः 1.33 एवं 1.25 रहा। इसी प्रकार आँवला-सुबबूल आधारित कृषि वन उद्यानिकी में क्रमशः 1.67 एवं 1.25 रहा जबकि आँवला आधारित कृषि उद्यानिकी पद्धति में यह क्रमशः 1.96 एवं 1.46 पाया गया। आँवला-सुबबूल आधारित कृषि वन उद्यानिकी एवं आँवला आधारित कृषि उद्यानिकी में निवेश वापसी समय चार वर्ष रहा जबकि इन्ही पद्धतियों में आन्तरिक वापसी दर (आई. आर. आर.) क्रमशः 21 तथा 26 प्रतिशत पाया गया। यद्यपि ये सभी पद्धतियाँ लाभदायक एवं किसान को सतत् रोजगार उपलब्ध कराने वाली है लेकिन आँवला आधारित कृषि उद्यानिकी इनमें सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध हुई।

निष्कर्षतः कोई सन्देह नहीं कि आँवला आधारित कृषि उद्यानिकी बुन्देलखण्ड जैसे अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लिए टिकाऊ आय का साधन बन सकती है।

कृषिवानिकी तकनीकी विकसित करने की अवस्थायें एवं उनके गुण

आर.पी. द्विवेदी एवं के.आर. सोलंकी
राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी- 284 003(उ.प्र.)

कृषिवानिकी क्या है ?

कृषिवानिकी भूमि और प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल का सामूहिक रूप हैं जिसमें अनाज, चारा आदि के उत्पादन के लिये फसलें उगाई जाती है तथा पेड़ों, झाड़ियों तथा फलदार पेड़ों को उगाया जाता है। कृषिवानिकी भूमि की दोनो उपयोग पद्धतियों का संकर रूप हैं, जहाँ उद्देश्य अनाज, चारा, फल, लकड़ी और अन्य लाभ प्राप्त करना हैं। कृषिवानिकी में वे सभी चीजें उगाने की कोशिश की जाती है, जिनकी आवश्यकता लोगों को होती है।

भारत में प्रचलित विभिन्न कृषिवानिकी प्रणालियों के उदाहरण है : वन-चरागाह, कृषि-चरागाह, कृषि-वन, कृषि-उद्यानिकी, वन-उद्यानिकी, वन-कृषि-रेशम, बागवानी-वन-कृषि-मधुमक्खी पालन तथा कृषि-उद्यान-चरागाह प्रणाली।

कृषिवानिकी तकनीकी की परिभाषा

कृषिवानिकी तकनीकी अनुसंधान से प्राप्त आँकड़ों पर आधारित एक ऐसी सूचना है जिसकी किसानों (उपयोग करने वालों) के लिये व्यवहारिक उपयोगिता हो तथा जो सस्ती, आर्थिक रूप से फायदेमंद, समाज की स्वीकृति एवं स्थानीय दशाओं में वातावरण की हितैषी हो।

तकनीकी विकसित करने की अवस्थायें

तकनीकी विकसित होने में निम्नलिखित छः अवस्थायें आती हैं -

1. आवश्यकता/समस्या का निर्धारण

विषय विशेष की समस्या जो उस क्षेत्र में हो या किन-किन मुद्दों पर आवश्यकता है, इस पर ध्यान दिया जाता है। उदाहरणार्थ राकड़ एवं पथरीली भूमि के विकास की आवश्यकता।

2. आधारभूत एवं व्यवहारिक अनुसंधान

इस अवस्था में जो प्रधान समस्या होती है उस विषय पर आधारभूत एवं व्यवहारिक अनुसंधान किये जाते हैं तथा यह पता लगाया जाता है कि

समस्या का समाधान कैसे हो।

3. तकनीकी विकास अवस्था

इस अवस्था में नये विचार को इस तरह से अनुसंधान के बाद संयोजित किया जाता है जिससे कृषकों की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है जिससे कृषकों की तथा समाज की समस्या का निदान संभव हो जाता है।

4. व्यापारीकरण

इसमें तकनीकी के व्यापारीकरण विशेषकर, विपणन, प्रयोग विधि तथा उसके वितरण की जानकारी दी जाती है।

5. तकनीकी प्रचार एवं अपनाना

यह सबसे कठिन अवस्था है। किसानों को तकनीकी अपनाने के लिये तैयार करना, जिससे दूसरे कृषक इसे देखें तथा लाभान्वित हों।

6. परिणाम

तकनीकी विकसित करने की अन्तिम अवस्था जिससे यह पता चलता है कि जिस आवश्यकता/समस्या के हल हेतु तकनीकी विकसित हुयी उसके क्या परिणाम रहे।

कृषिवानिकी तकनीकी के गुण

कृषिवानिकी तकनीकी में निम्न गुण होने चाहिए :

1. तुलनात्मक फायदा
2. सामाजिक मूल्यों एवं विचारों से मेल
3. समझने एवं उपयोग में सरल
4. सीमित साधनों में अपनायी जाये
5. जिसके परिणाम दूसरों को आसानी से दिखें

संगोष्ठी में भागीदारी

- डॉ. के. करिमुल्ला, वरिष्ठ वैज्ञानिक (कृषि अर्थशास्त्र) ने राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रबन्ध संस्थान, हैदराबाद में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी "कृषि विपणन एवं प्रबन्धन : नई सहस्त्राब्दी की चुनौतियाँ", 24 - 25 अगस्त, 2000 में भागीदारी की।
- डॉ. के. आर. सोलंकी, निदेशक ने राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रबन्ध संस्थान, हैदराबाद में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी "कृषि विपणन एवं प्रबन्धन : नई सहस्त्राब्दी की चुनौतियाँ", 24 - 25 अगस्त, 2000 में भागीदारी की।

मानव संसाधन विकास

- डॉ. आर.पी. द्विवेदी, वैज्ञानिक (कृषि विस्तार) ने राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबन्ध अकादमी, हैदराबाद में सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन के प्रशिक्षण कार्यक्रम में 20 जून से 1 जुलाई 2000 तक भागीदारी की।
- डॉ. आर.वी. कुमार, वैज्ञानिक (पादप प्रजनन) ने आई.ए.एस.आर.आई., नई दिल्ली में सामाजिक विज्ञान के लिये सांख्यकीय पैकेज के प्रशिक्षण कार्यक्रम में 21-26 अगस्त 2000 तक भागीदारी की।

लकड़ी, चारा, फल और अन्न। कृषिवानिकी है जीवन।।

फसलों के साथ वृक्ष उगायें। ईंधन, लकड़ी, चारा और फल भी पायें।।

आगन्तुक

- श्री दिवाकर विक्रम सिंह, कृषि मन्त्री, उत्तर प्रदेश सरकार (उ.प्र.)
- डॉ. के.एन. नाग, भूतपूर्व कुलपति, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, (राजस्थान)
- डॉ. प्रेम शंकर पाठक, निदेशक, भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)
- डॉ. आइ.ए. खान, निदेशक, ए.इ. इ.सी. पंजाब राव कृषि विद्यापीठ, अंकोला (महाराष्ट्र)
- डॉ. बी. एकाम्बरम, वैज्ञानिक, एल. आर. एस. आन्ध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, हैदराबाद (आ.प्र.)
- डॉ. आर.ए. सिंह, प्रधान वैज्ञानिक (पादप रोग), भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर (उ.प्र.)
- डॉ. प्रभात त्रिपाठी, केन्द्रीय बकरी अनुसंधान केन्द्र, मकदूम (मथुरा)
- श्रीमती शोभना चटर्जी, आर्चीटेक्ट, केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग, नई दिल्ली।
- श्री बी.डी. शंखवार, मुख्य वन संरक्षक, सामाजिक वानिकी, ग्वालियर (म.प्र.)
- डॉ. के.एस. दत्ता, सहायक अनुसंधान वैज्ञानिक, गुजरात कृषि विश्वविद्यालय, जूनागढ़ (गुजरात)

प्रशिक्षण कार्यक्रम

दिनांक 23-24 अगस्त, 2000 को मध्य प्रदेश में दतिया जिले के ग्राम कंटीली में दो दिवसीय "देशी बेर पर उन्नत किस्म की बेर प्रजाति की कलम बाँधने" का कृषकों को प्रशिक्षण दिया गया। जिसमें 35 कृषकों एवं ग्रामीण युवाओं ने भाग लिया। डॉ. आर. के. तिवारी, वरिष्ठ वैज्ञानिक (उद्यानिकी) ने कलम बाँधने की विधि का प्रदर्शन किया जिसको ग्रामीण युवाओं व कृषकों ने भी दोहराया। कार्यक्रम के संयोजक डॉ. आर.पी. द्विवेदी, वैज्ञानिक (कृषि विस्तार) ने आभार व्यक्त किया।

दिशा निर्देश एवं मार्गदर्शन : डॉ. के.आर. सोलंकी, निदेशक

सम्पादक : डॉ. आर.पी. द्विवेदी
तकनीकी सहायता : सी.के. बाजपेयी
छायांकान : राजेश श्रीवास्तव
टंकण : हूब लाल

प्रकाशक :
निदेशक
राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी
दूरभाष : + 91 - (0517) - 448213
फैक्स : + 91 - (0517) - 442364
ई-मेल : nrcaf@hub1.nic.in

मुद्रक :
मिनी प्रिन्टर्स
आँतिया तालाब रोड
झाँसी-284002
✆ : (0517) 446820, 447831